International Journal of Applied Research 2015; 1(12): 909-912

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2015; 1(12): 909-912
www.allresearchjournal.com
Received: 23-09-2015
Accepted: 24-10-2015

शारदा वंदना
शोध छात्रा दर्शनशास्त्र विभाग
रांची विश्वविद्यालय रांची
(झारखंड).

Correspondence
शारदा वंदना
शोध छात्रा दर्शनशास्त्र विभाग
रांची विश्वविद्यालय रांची
(झारखंड).

मार्क्सवाद के दर्शन में भौतिकवाद का स्वरूप

शारदा वंदना

भारत में भौतिकवाद का अस्तित्व प्राचीन काल से है। भौतिकवाद क्रांतिकारी सिद्धांत ही नहीं अपितु पूरब और पश्चिमी समाज का दर्शन है। भौतिकवाद भारतीय दार्शनिक चिंतन की एक धारा है। यह भारतीय दर्शन में प्राचीन काल से अविरल रूप से प्रवाहित होती रही है। इसे लेकर भारतीय विमर्श में यह भ्रांति रही है कि भौतिकवाद भारत की उपज नहीं है बल्कि यह पश्चिमी देशों से आयातित विचार है जबकि सत्य है कि भौतिकवाद का जन्म भारत में एक दर्शन के रूप में हुआ है। भारतीय दर्शन में दो प्रकार की जीवन दृष्टि प्रमुख रूप से सामने आती है। पहली भौतिक जीवन दृष्टि एवं दूसरी आध्यात्मिक जीवन दृष्टि। भौतिकवाद वह तत्वशास्त्रीय सिद्धांत है, जिसके अनुसार विश्व का मूलतत्त्व जड़ द्रव्य या भौतिक द्रव्य है। [1]

19 वीं सदी में आधुनिक काल के दुर्दान्त भौतिकवादी दार्शनिक कार्ल मार्क्स ने वैज्ञानिक समाजवाद का प्रतिपादन कर भौतिकवाद की दार्शनिक व्याख्या को उसकी पराकाष्ठा तक पहुंचाया। मार्क्स का यह मौलिक सिद्धांत ही मार्क्सवाद के नाम से प्रचलित हुआ। वैज्ञानिक समाजवाद के अवधारणात्मक ढ़ांचा के निर्माण के क्रम में मार्क्स पर विभिन्न विचारकों, यथा– हेगल, कांट, फायरबाख, सेंट साइमन आदि के प्रभाव परिलक्षित होते हैं। मार्क्स भौतिक तत्त्व को ही परम तत्त्व तथा समस्त जीवन–मंत्र का आधार मानता है और हेगेल जैसे प्रत्ययवादियों की इस मान्यता को खारिज कर देता है कि सृष्टि का आधार चेतन तत्व ही परम तत्व है। मार्क्स प्रत्ययवाद की इस धारणा को अस्वीकार करता है कि प्रकृति में क्रम–विकास किसी उद्देश्यपरक सिद्धांत द्वारा निर्देशित होता है। उसके अनुसार विश्व में कोई भी सत्ता आधारभूत रूप से निरपेक्ष, अंतिम एवं पवित्र नहीं होती। वे सभी मूल रूप से सापेक्षिक, क्रियाशील एवं क्षणस्थायी हैं। [2]

मार्क्स के अनुसार भौतिक तत्व अपने अंशों में निहित अन्तर्विरोध के कारण क्रियाशील होती है। प्रकृति में कुछ भी अपरिवर्तनशील नहीं हैं, जो अस्तित्व में है उसका विरोध और पुनः उसका विरोध की निरंतर प्रक्रिया के कारण द्वंद्वात्मक विधि से भौतिक तत्व का क्रम–विकास जारी रहता है। भौतिक जगत में अन्तर्निहित द्वंद्व क्रम–विकास के माध्यम से ही दूर होता है, जबकि प्रत्ययों का पारस्परिक विरोध कभी भी स्थायी रूप से दूर नहीं होता है।

द्वंद्वात्मक भौतिकवाद को समझने के लिए द्वंद्वन्याय को समझाना आवश्यक है। कोई व्यक्ति एक बात करता है, दूसरा उसका विरोध करता है। फिर दोनों की परस्पर विरोधी बातों से एक तीसरी बात का निर्णय होता है। इस प्रकार परस्पर विरोध विचारों से तीसरे विचार या निर्णय पर पहुंचते हैं। उसे ही द्वंद्वान्याय या डायलेक्टिवस कहते हैं। इस प्रक्रिया का अर्थ है दो विरोधी विचारों के द्वंद्व से तीसरे स्थान पर पहुंचना। प्रकृति का एक तीसरे रूप में विकसित होना। जैसे हाईडोजन और ऑक्सीजन के मिलने से तीसरे तत्त्व जल का निर्माण होता है। प्रकृति एक तंत्र है, जिसके समस्त अंग परस्पर संबंध है। वह परिवर्तनशील, विकासोन्मुख और प्रतिदिन होने वाली नई घटनाओं का प्रवाह है। विकास के क्रम में जो परिवर्तन होते हैं, वे यथार्थ होते हैं, भूतकालीन घटनाओं का चित्रण मात्र नहीं होते। विश्व में नवीन घटनाएं, नवीन वस्तुएं हमेशा उत्पन्न होती रहती है। इस प्रकार द्वंद्वन्याय विकास की प्रक्रिया को बताता है। [3]

द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार प्रकृति जगत असम्बद्ध वस्तुओं का समूह न होकर सम्बद्ध अवयवों का तंत्र है। प्रकृति की विभिन्न घटनाएं एक दूसरे पर निर्भर करती है तथा एक दूसरे के द्वारा संचालित होती है। किसी पदार्थ को उसके एकाकी रूप में नहीं समझा जा सकता। प्रकृति में हमेशा परिवर्तन होता रहता है। प्रकृति में हर क्षण नवीनताओं का अविर्भाव होता रहता है। इसलिए किसी वस्तु के यथार्थ को समझाने के लिए उसके विकासात्मक स्वभाव को ध्यान में रखकर ही उसका अध्ययन करना होगा। वस्तुओं के पारस्परिक संबंधों का अध्ययन करने के साथ–साथ उसके

विकास पर भी ध्यान देना चाहिए, क्योंकि द्वंद्वात्मक गति वर्तुल गति की तरह हमेशा अपनी आवृत्ति नहीं करती। प्रकृति में पुन्नरावृति न होकर ऊर्ध्वमुखी गति रहती है। [4]

मार्क्सवाद में माना गया है कि वस्तुओं में आंतरिक विरोध रहता है, विरोध वस्तुओं का स्वभाव है। विकास का अर्थ विरूद्धों का द्वंद्व है। यह द्वंद्व का नियम सृष्टि के समान समाज तथा इतिहास की प्रगति में भी लागू है। द्वंद्वात्मक भौतिकवाद आंतरिक नियमों का ज्ञान कराता है। इसके अनुसार भौतिक जगत का विकास होता है। भौतिक जगत में रहने वालों का विकास होता है और विचारों में रूपांतर होता है। चेतना का जो रूप दिखाई देता है, वह एक अवस्था विशेष में पैदा होता है। मार्क्सवादी दर्शन में जड़ तथा चेतन की सत्ता एक है। अर्थात चेतना विकासमान पदार्थ का गुण है। इस प्रकार द्वंद्वन्याय का कार्य विश्व की प्रगति के नियमों की खोज है।

द्वंद्वन्याय के प्रमुख नियम है

(1.) मात्रा भेद से गुण भेद का नियम
(2.) विरोधी–समागम नियम
(3.) निषेद का निषेद नियम

(1.) मात्रा भेद से गुण भेद का नियम मार्क्स के अनुसार प्रत्येक पदार्थ में परिवर्तन क्षणिक नहीं प्रतिक्षण होता है। लेकिन किसी पदार्थ में प्रतिक्षण होने वाले परिणात्मक परिवर्तनों को उन गुणात्मक परिवर्तनों से अलग माना जाना चाहिए, जो इस पदार्थ में निरंतर होते हैं। जैसे बोने के समय से लेकर अंकुर जनन तक एक बीज के गर्भ में चलने वाले इस क्षणिक परिवर्तनों को बीज के गर्भ से अंकुर जननरूपी परिवर्तन की तुलना में अगले श्रेणी का माना जाना चाहिए। मार्क्स ने बीज के गर्भ में चलने वाले क्षणिक परिवर्तनों को परिणात्मक परिवर्तनों की तथा बीज के गर्भ से अंकुर जनरूपी परिवर्तन को गुणात्मक परिवर्तन कहते हैं। मार्क्स के अनुसार प्रत्येक परिमाणात्मक परिवर्तन किसी न किसी गुणात्मक परिवर्तन को जन्म देती है। यह सिद्धांत मार्क्स के द्वंद्वन्याय का हृदय है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि मात्रा बढ़ने या घटने से वस्तुओं का रूपांतर हो जाता है। मात्रा भेद से गुण भेद की उत्पत्ति होती है। इसे एक उदाहरण से समझ सकते हैं, जैसे पानी को ज्यादा गर्म करने से पानी रूपान्तरित होकर वाष्प बन जाता है। ठीक उसी प्रकार ठंड ज्यादा होने पर पानी बर्फ बन जाता है। इन दोनों उदाहरणों में मात्रा भेद होता है। स्पष्ट है कि अणुओं की मात्रा भेद से वस्तु का रूप बदल जाता है और नये गुण उत्पन्न हो जाते हैं। दार्शनिक दृष्टि से मात्रा भेद से गुण भेद काफी महत्वपूर्ण है। जब मात्रा भेद परिवर्तन होकर एक विशेष अवस्था में पहुंचता है, तो गुणात्मक भेद का जन्म होता है। इस आकस्मिक परिवर्तन को शास्त्रीय भाषा में कुदान या लीप (स्मंच) कहा जा सकता है। जड़ और चेतना के गुणों में अंतर होने के बाद भी जड़ तत्त्वों से चेतन प्राणियों का विकास होता है। मार्क्स ने जड़ तत्त्वों में जीव तथा चैतन्य में गुणात्मक भिन्नता स्वीकार की है, लेकिन उनकी उत्पत्ति जड़तत्त्वों से सिद्ध की है। मार्क्स ने इस सिद्धांत का प्रयोग सामाजिक विकास में भी किया है। जैसे शिशु नौ माह गर्भ में विकसित होता है और माता को कठिन प्रसव पीड़ा देने के बाद बाहर निकलता है। ठीक उसी प्रकार प्राचानी समाज में क्रांति के द्वारा नये समाज का जन्म होता है। चूंकि परिवर्तन सृष्टि का नियम है इसलिए नये समाज का सृजन होता है। [5]

(2.) विरोधी–समागम नियम

मार्क्स के अनुसार सभी वस्तुओं में आंतरिक विरोध स्वाभाविक प्रक्रिया है। प्रत्येक वस्तु में भूत और भविष्य उसके नाशवान और विकसित होने वाले रूप में द्वंद्व रहता है। विकास के क्रम में प्रत्येक क्षण होने वाले अन्तर्विरोध से नया रूपांतरण होता है, जहां प्रत्येक प्राणी में परम्परागत गुण मौजूद होते हैं, वहीं नये परिवर्तन भी होते रहते हैं।

यहीं जीवन के विकास का रहस्य है। पूंजीवाद से पहले सामन्तवादी प्रणाली का वर्चस्व था, लेकिन समय के साथ सामन्तवादी व्यवस्था में काफी वाद–विवाद तथा अन्तर्विरोध उत्पन्न हो गये। धीरे–धीरे इसने भारी संघर्ष का रूप ले लिया। इसी संघर्ष के कालखंड के बाद पूंजीवाद का उदय हुआ।

इस तरह हम देखते हैं यह संसारी परिवर्तनशील है। एक व्यवस्था के बाद असंतोष उत्पन्न हो जाता है, जिसके कारण एक नयी व्यवस्था का जन्म होता है। हर व्यवस्था के अंदर ही उसके विनाश के बीज भी मौजूद रहते हैं। साम्यावस्था में अन्तर्विरोध होता है, जो समय चक्र के अनुसार इस व्यवस्था का विनाश कर एक नवीन व्यवस्था कायम होती है और इसी प्रकार प्रगति का रास्ता निरंतर आगे बढ़ता रहता है।

मार्क्स का भी मानना है कि विरोध अस्थायी होता है। संघर्ष के बल पर एक नयी प्रणाली विकसित होती है। मार्क्स सुधार की जगह क्रांति को कारगर हथियार मानते हैं। मार्क्सवाद के अनुसार प्रत्येक सामाजिक या आर्थिक व्यवस्था में दो विरोधी तत्त्व जरूर शामिल होते हैं। एक कमजोर होता है, तो दूसरा ऊंचाई की ओर बढ़ता जाता है। कालांतर में दूसरा तत्त्व इतना मजबूत हो जाता है कि वह क्रांति के बल पर पहले तत्त्व को नष्ट कर देता है। इस प्रकार पहले तत्त्व को पक्ष तथा दूसरे तत्त्व को प्रतिपक्ष कहते हैं। [6]

(3.) निषेद का निषेद नियम

प्रतिपक्ष के निषेद को निषेद का निषेद कहते हैं। प्रतिपक्ष पक्ष के निषेद के बाद अपने अन्तर्विरोध के कारण निषिद्व हो जाता है। इस अंतिम निषेद के बाद पक्ष और प्रतिपक्ष के विरोधों का निराकरण होकर सामंजस्य स्थापित हो जाता है। द्वंद्वन्याय में निषेद का अर्थ सिर्फ विनाश नहीं बल्कि स्वीकृति तथा संरक्षण रूप भी है। जैसे जौ के एक दाने को भी उचित भूमि, उष्णता तथा नमी मिल जाये, तो वह दाना परिवर्तित होकर पौधा बन जाता है। इस तरह हम देखते हैं कि दाने का निषेद हो गया और उस दाने के स्थान पर पौधा उत्पन्न हो गया, जो दाने के निषेद से उत्पन्न हुआ। फिर पौधे का विकास हुआ, उसमें फूल आते हैं। फूलों में गर्भाधान होता है और बाद में पौधे में एक बार फिर दाने निकलते हैं, दाने पक जाते हैं, तब जौ का पौधा सूखकर गिर जाता है उसका निषेद हो जाता है। निषेद के बाद फिर हम जौ के दाने को पाते हैं, लेकिन वे संख्या में अनेक होते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि बीज के निषेद से फूल और फूल के निषेद से फल का जन्म होता है, लेकिन बीज और फूल नष्ट नहीं होते बल्कि उनका फल में पर्यवसान होता है। इस प्रकार आर्थिक व्यवस्था में निषेध का निषेध होता है। समाज में जब पूंजीपतियों की पूंजी का निषेध होता है, तो वह पूंजी नष्ट न होकर श्रमिक और पूंजीपतियों की सम्मिलित पूंजी हो जाती है। दोनों का उसमें समान अधिकार होता है। अर्थात् दोनों मिलकर पूंजी का उपभोग करते हैं। इस तरह श्रमिक और पूंजीपति में भेद खत्म हो जाता है। उक्त तीनों नियम ही सारांश रूप में द्वंद्वात्मक प्रगति के नियम हैं, जो भौतिक जगत और सामाजिक जगत, जड़ विश्व के विकास तथा मानव इतिहास की गति को निर्धारित करते हैं। [7]

ऐतिहासिक भौतिकवाद

मार्क्स ने द्वंद्वात्मक भौतिकवाद को स्पष्ट करने के लिए इतिहास की भौतिकवादी व्यवस्था प्रस्तुत की। इसी को मार्क्स का ऐतिहासिक भौतिकवाद कहा जाता है। इतिहास से संबंधित अपने पूर्ववर्ती विचारकों से असहमत होते हुए मार्क्स ने बतलाया कि दुनिया में आज तक जो इतिहास लिखा गया है, वह केवल राजा–महाराजाओं तथा कुछ विशेष तारीखों का विवरण है। विश्व के इतिहासकारों ने साधारण लोगों के इतिहास की चर्चा नहीं की

है। इसके विपरित, वास्तविकता यह है कि जब तक हम जन साधारण के इतिहास को नहीं समझ लेते, तबतक सामाजिक विकास की प्रक्रिया को नहीं समझा जा सकता। राजाओं के इतिहास अथवा उनके उत्थान और पतन के आधार पर सम्पूर्ण समाज की परिवर्तन–धारा को समझना संभव नहीं है।

अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'साम्यवादी घोषणा–पत्र' के अंतर्गत मार्क्स ने इतिहास की व्याख्या भौतिकवादी आधार पर प्रस्तुत की। इस पुस्तक के मुखपृष्ठ पर मार्क्स ने अपने विचारों का निचोड़ देते हुए यह लिखा कि दुनिया का आज तक का इतिहास वर्ग–संघर्ष का इतिहास है। वर्ग संघर्ष के फलस्वरूप ही समाज में आर्थिक परिवर्तन बहुत शीघ्र होता है, ऐसी स्थिति में समाज में राजनैतिक परिवर्तन तेजी से होने लगते हैं और किसान एवं श्रमिकों में अपने अधिकारों के प्रति चेतना पनपने लगती है, क्योंकि उन्हें इस बात का पता चल जाता है कि वस्तुओं के उत्पादन में उनका अंशदान सबसे अधिक है। अतः किसान एवं श्रमिक अपने अधिकारों के लिए पूंजीपतियों से संघर्ष करने लगते हैं और पूर्णतः अधिकार प्राप्त कर लेने तक संघर्षरत रहते हैं। [8]

मार्क्स ने कहा कि मजदूर वर्ग एवं पूजीपतियों में संघर्ष अवश्यमभावी है। मानव समाज में परिवर्तन इसी आवश्यक नियमानुसार होता है। जिस मात्रा में मजदूर वर्ग की शक्ति बढ़ती जाती है उसी मात्रा में पूंजीपति दुर्बल होते जाते हैं और अंत में विनष्ट भी हो सकते हैं। पूंजीपतियों का विनाश होने पर समाज में समाजवादी विचारधारा आसानी से विकसित होने लगती है और मजदूर वर्ग समाज को अपने काबू में लाने में सफल होता है। अतः मार्क्स इस निष्कर्ष पर पहुंच कि मानव इतिहास का विकास समाज के वर्ग संघर्ष के कारण होता है तथा मानव इतिहास धीरे–धीरे समाजवाद की ओर अग्रसर हो रहा है।

खाना कपड़ा, मकान आदि जीवन का आवश्यक चीजें हैं, जिनकी उपयोगिता आरंभिक मानव से आज तक एक सी है। इनका उत्पादन से मनुष्य के सामाजिक परिवर्तन में हमेशा सबसे बड़ा हाथ रहा। उत्पादन शक्तियां एक ओर बढ़ती गई शिकार से खेती, खेती से शिल्प, शिल्प से वाणिज्य, वाणिज्य से कारखाने, जिसके कारण समाज में बदलाव आया और हर सीढ़ी पर समाज की पूर्व से चली आई व्यवस्था में गड़बड़ी पैदा हुई। उत्पादन शक्तियों की वृद्धि के साथ व्यक्तियों का नया संगठन जरूरी है पुरानी व्यवस्था लगातार नहीं चल सकती। [9]

व्यक्तियों की नई जरूरतमंद चीजें पहले उत्पादन या आर्थिक क्षेत्र में होती है, उसी के समाज के सामाजिक राजनीतिक ढ़ांचे में परिवर्तन लाजिमी है, जिसका अर्थ है कानून आचार आदि सभी के मानव तथा समाज में मानसिक भावों के परिवर्तन यह इसलिए कि इसके बिना नई उत्पन्न सामाजिक समस्याओं को हल नहीं किया जा सकात। ये बातें समाज की प्रारम्भिक अवस्थाओं में साफ दिखाई पड़ता है। मार्क्स ने अपने राजनीतिक अर्थशास्त्र की आलोचना में लिखा है ''अपने विकास की एक खास अवस्था में समाज के भीतर उत्पादन की मौलिक शक्तियों की उत्पादन की मिल्कियत के उन संबंधों में टक्कर हो उठती है, जिनके अंदर रहकर उत्पादन शक्तियां अबतक काम कर रही थी, जहां पहले ये संबंध उत्पादन शक्तियों के विकास का रूप थी, वहां वहीं अब उनके लिए बोड़ियां बन जाती हैं। आर्थिक नींव के परिवर्तन के साथ–साथ थोड़ा या ज्यादा सारा ऊपरी ढ़ांचा तेजी के साथ बदल जाता है। इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या प्रस्तुत करते हुए मार्क्स ने समाज के सम्पर्ण इतिहास को चार युगों में विभाजित किया। [10]

इस आधार पर मार्क्स ने मानव समाज के विकास को चार भागों में विभाजित किया है। वे इस प्रकार हैं:–

(1.) आदिम साम्यवादी समाज (Primitive Communist society)
(2.) प्राचीन दास समाज (slave society)
(3.) सामंतवादी समाज (Feudal society)
(4.) पूंजीवाद समाज (Capitalist Society)

(1) आदिम साम्यवादी समाज (Primitive Communist society)

आदिकाल साम्यवादी व्यवस्था में उत्पादन के साधन सीमित, सरल एवं अनगढ़ अव्यवस्था में थे, जिनपर सामूहिक अधिकार होता था। जीवन प्रणाली अनिवार्य रूप से सामूहिकता के आधार पर संगठित थी। धीरे–धीरे जनसंख्या में वृद्धि होने के फलस्वरूप आवश्यकताएं बढ़ती गयी एवं उनकी पूर्ति के लिए उत्पादन के साधनों का निरंतर विकास होता रहा। पत्थर निर्मित औजारों का स्थान धातु औजारों ने ले लिया। उत्पादन के क्षेत्र में क्रांति आई, पैदावार में वृद्धि हुई एवं श्रम विभाजन संभव हुआ। कृषि के अलावे लोग अन्य पेशे अपनाने लगे और वस्तुओं का आदान–प्रदान वस्तुगत पद्धति (ठंतजमत ेलेजमउ) द्वारा होने लगा। उत्पादन के साधन सामूहिक से व्यक्तिगत अधिकार में आने लगे। धीरे–धीरे व्यक्तिगत संपत्ति का आविर्भाव हुआ, जिससे स्वामी एवं दास के संबंध उत्पन्न हो गये। इस प्रकार आदिम साम्यवादी समाज उत्पन्न हो गये। इस प्रकार आदिम साम्यवादी समाज का स्थान दास समाज ने ले लिया। [11]

(2) प्राचीन दास समाज (slave society)

दास समाज में उत्पादन के साधनों पर स्वामियों का अधिकार हो गया। वे अपने हितों की रक्षा के लिए दासों का शोषण करने लगे। अपने अधिकारों एवं आर्थिक हितों की रक्षा के लिए शोषण के एक यंत्र के रूप में उन्होंने एक वर्ग संगठन की आवश्यकता महसूस की। इस प्रकार राज्य का प्रादुर्भाव हुआ। एक नये समाज की रचना हुई, जिसका आधार सामंतवादी था।

(3) सामंतवादी समाज (Feudal society)

सामंतवादी समाज में भी समय की मांग के अनुरूप उत्पादन के संबंधों में परिवर्तन होता रहा। समाज की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उत्पादन के नये–नये साधनों की खोज शुरू हुई। वैज्ञानिक एवं भौगोलिक आविष्कारों ने उत्पादन के साधनों को प्रभावित किया एवं नये उत्पादन संबंधों को जन्म दिया। सामंतवाद के आधारभूत तत्त्व भूमि के बजाए समाज में वाणिज्य व्यवस्था का महत्व बढ़ने लगा। नवोदित व्यवसायी वर्ग सामंतवादी व्यवस्था का विरोध करने लगे। नये उत्पादन संबंध पुराने उत्पादन संबंधों से टकराने लगे, जिसकी परिणति सामंतवादी प्रथा के अंत तथा पूंजीवाद समाज के आगमन के रूप में हुई।

(4) पूंजीवाद समाज (Capitalist Society)

पूंजीवादी व्यवस्था ने सामंतवादी व्यवस्था के अंतर्गत उत्पादन में उत्पन्न अवरोधों को दूर कर दिया एवं उत्पादन के क्षेत्र में नये मापदंडों को स्थापित किया। उत्पादन के साधनों पर संपूर्ण रूप से पूंजीपतियों का स्वामित्व स्थापित हो गया और श्रमिक स्वतंत्र रूप से श्रम बेचने वाले सर्वहारा वर्ग में परिवर्तित हो गया। [12]

निष्कर्ष

मार्क्स का भौतिकवाद द्वंद्वात्मक तथा ऐतिहासिक भौतिकवाद दोनों कहलाता है। मार्क्स ने जड़ पदार्थ तथा जड़ जगत के अस्तित्व को चेतन जीवों के अस्तित्व से पृथक तथा पूर्व माना। ईश्वर तत्त्व इसमें नहीं है। जगत का विकास स्वयंमेव मूल जड़ पदार्थ से लेकर चेतन और नैतिक मानव प्राणियों तक हो रहा है। इस विकास में किसी अतिप्राकृतिक सत्ता का कोई हाथ नहीं है।

मार्क्स का भौतिकवाद परम्परागत भौतिकवाद से भिन्न है। यह भिन्न्ता इस रूप में है कि मार्क्स ने मन और भौतिक द्वव्य के विरोध अथवा प्राथमिकता का प्रश्न कभी नहीं उठाया। वस्तुतः अपने अनुयायियों एंगेल्स, लेनिन एवं स्टालिन के प्रचार के कारण उन्हें शुद्ध भौतिकवादी माना जाता है।

संदर्भ सूची

1. Marx-Engeles, collected works, progress pub-1975, 1, 18.
2. The German ideology, 616, 617
3. Marx, Karl. Leading article in of kolniseche zeitung in collected works. Progress Pub. Mascow, 1975; I(7):179-195.
4. See Edgly, Roy's Essay entitled Philosophy in Marx, The first hundred years, edited by David Mclellan, Great Britain Fontana, paper backs, 183-265.
5. वहीं, पेज न. 544–545
6. The German ideology, p- 43
7. शर्मा, श्रीनाथ तथा अग्रवाल जी.के.– प्रमुख सामाजिक विचारक, पचकुइयां, आगरा, 1992
8. (Marx, karl A contribution to the critique of political Economy)
9. शर्मा, श्रीनाथ तथा अग्रवाल, जी.के–प्रमुख सामाजिक विचारक, पचकुइयां, आगरा, 1992, पेज न.–159
10. Karl, Marx and friendrich Engels, The communist manifesto 21 February 1848
11. सिन्हा, अजित कुमार– समकालीन दर्शन, हरियाणा हिन्दी ग्रंथ अकादमी संस्कार चंडीगढ़, 1999,
12. मिश्र, अर्जुन–दर्शन की मूल धाराएं, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 1997 पेज न. 82